**ओ३म्**

**‘आर्यसमाज का सार्वभौमिक कल्याणकारी लक्ष्य एवं उसकी पूर्ति में बाधायें’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्य समाज का उद्देश्य संसार में ईश्वर प्रदत्त वेदों के ज्ञान का प्रचार व प्रसार है। यह इस कारण कि संसार में वेद ज्ञान की भांति ऐसा कोई ज्ञान व शिक्षा नहीं है जो वेदों के समान मनुष्यों के लिए उपयोगी व कल्याणप्रद हो। वेद ईश्वर के सत्य ज्ञान का भण्डार हैं जिससे मनुष्यों का इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन सफल होता है। आज भी जब हम पौराणिक मत और संसार के अन्य सभी मतों पर दृष्टि डालते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य स्वरूप के प्रति भ्रम की स्थिति है। इस कारण मनुष्य जाति के हित की दृष्टि से यह परम आवश्यक है कि संसार के एक-एक मनुष्य में वेदों का प्रचार व प्रसार हो जिससे सभी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को जान व समझ सकें और फिर उद्देश्य के अनुरूप वेदों द्वारा बताये गये साधनों का प्रयोग करके उनके अनुरूप जीवन व्यतीत करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कर जीवन को सफल बना सकें। संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति विषयक सत्य ज्ञान की कमी को सबसे पहले प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने अनुभव किया था और उसे उन्होंने अपने शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती को अनुभव कराया। सन् 1863 में गुरू दक्षिणा के अवसर पर स्वामी विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द से अनुरोध किया कि वह स्वदेश व विश्व के कल्यार्थ अपना शेष जीवन सत्य वा वेदों के प्रचार में व्यतीत करें। इसका अर्थ था कि वह असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन करके सत्य ज्ञान वेदों का प्रचार करें। गुरू की आज्ञा के अनुसार स्वामी दयानन्द जी ने संसार के सभी मनुष्यों किंवा प्राणीमात्र के कल्याण के लिए वेदों के सत्य वा यथार्थ स्वरूप एवं उनकी प्राणी मात्र की हितकारी शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार किया।

हम सभी यह जानते हैं कि आजकल संसार में जितने भी मत-मतान्तर प्रचलित हैं वह विगत 500 से लेकर लगभग 2500 वर्ष के अन्दर अस्तित्व में आये हैं। इससे पूर्व संसार में केवल वैदिक मत ही प्रचलित था। यह वैदिक मत सृष्टि के आरम्भ में अब से लगभग 1 अरब 96 करोड़ वर्ष पूर्व ईश्वर द्वारा वेदों का ज्ञान दिये जाने के साथ आरम्भ हुआ था और अबाध रूप से अब से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत काल तक सारे संसार में प्रवृत्त रहा। महाभारत के भीषण युद्ध में भारत की सभी प्रशासनिक एवं सामाजिक व्यवस्थायें अस्त व्यस्त हो गईं जिसके कारण भारत एवं विश्व में अज्ञान फैल गया। इस अज्ञान का परिणाम ही अन्धविश्वास एवं कुरीतियों का प्रचलन देश व संसार में होना है। महाभारत काल के बाद अज्ञान बढ़ता रहा और विश्व समुदाय में लोगों का जीवन कष्टकर होता गया। इस बीच संसार में अनेक धर्मात्माओं का जन्म हुआ जिन्होंने अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर मनुष्यों की समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए। जीव अल्पज्ञ है अतः कुछ उनकी अल्पज्ञता व कुछ उनके अनुयायियों की नासमझी के कारण संसार वेदों के ज्ञान तक पहुंचने में कृतकार्य न हुआ। प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द ने वेदों के सत्यज्ञान को जाना तो परन्तु प्रज्ञाचक्षु होने के कारण वह इसका प्रचार-प्रसार नहीं कर सकते थे। वहीं स्वामी दयानन्द भी सत्य की खोज में विचरण कर रहे थे। उन्हें स्वामी विरजानन्द जी का पता चला तो वह सन् 1860 में लगभग 35 वर्ष की आयु में उनके पास मथुरा में पहुंचे और उनसे उन्हें शिष्यत्व प्रदान करने की प्रार्थना की। उनका अध्ययन आरम्भ हुआ और लगभग 3 वर्ष की अवधि में वह पूरा हो गया। इस प्रकार से महर्षि दयानन्द ने अपने बाल्यकाल से सत्य ज्ञान की खोज का जो प्रयास किया था वह सन् 1863 में आकर पूरा होता है। इस प्रकार उन्होंने गुरू की आज्ञा से देश व संसार से अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियां दूर करने का व्रत किया। यह ऐसा व्रत था कि जैसा विगत पांच हजार वर्षों के इतिहास में संसार में किसी ने नहीं लिया था। उन्होंने योजना बनाई और असत्य का खण्डन व सत्य का मण्डन आरम्भ कर दिया। हम यह भी पाते हैं विगत 5000 वर्षों में देश में विद्वान व महापुरूष तो अन्य भी कई हुए परन्तु जो वेदों का ज्ञान, योग्यता व विद्वता महर्षि दयानन्द में थी, वह उनके पूर्ववती किसी महापुरूष में नहीं थी।

अपने गुरू को दिए वचन को पूरा करने के लिए महर्षि दयानन्द ने पूरे देश का भ्रमण कर वहां अन्धविश्वास व पाखण्ड का अध्ययन किया व उसका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। यह कार्य वह गुरू के पास अध्ययनार्थ आने से पूर्व भी करते रहे थे। उन्होंने भारतीय व विदेशी मत-सम्प्रदायों व उनकी धर्म पुस्तकों का भी अध्ययन किया। अपने अध्ययन के आधार पर आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कि संसार से संबंधित सम्पूर्ण सत्य केवल वेदों में ही है। अन्य सभी मतों में कुछ सत्य व कुछ व अधिक असत्य है। उन्होंने यह भी जाना कि नाना मतों की परस्पर विरोधी शिक्षाओं के कारण संसार में विभिन्न मत के लोग आपसे में लड़ते रहते हैं जिससे उनका यह मनुष्य जीवन व्यर्थ चला जाता है। यह मनुष्य जीवन ईश्वर के द्वारा आपस में लड़ने व मरने के लिए नहीं मिला है अपितु सत्य के अनुसंधान तथा वेदानुसार जीवन व्यतीत करने के लिए मिला है जिससे मनुष्य सत्य को जान व पहचान कर सत्य का आचरण कर जीवन के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त करें। अपनी वेद विषयक मान्यताओं के अनुसार स्वामी दयानन्द जी ने अपना जीवन बनाया और संसार में डिन्डिम घोष किया कि **“वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का पढ़ना व पढ़ाना तथा सुनना व सुनाना संसार के सभी मनुष्यों का परमधर्म है।” उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि वेद सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा चार सबसे अधिक पवित्र चार ऋषि आत्माओं को दिया गया ज्ञान है। अपने इस कथन को उन्होंने युक्ति व प्रमाणों से सिद्ध भी किया।** इसके बाद उनका प्रचार कार्य आरम्भ हो गया। अपना कार्य आरम्भ करते हुए पहले उन्होंने अपने देश के मतों की परीक्षा कर उनका सुधार करने का प्रयास किया। इस प्रयास में जहां उन्होंने मौखिक उपदेश व प्रवचन आदि किये वहीं अज्ञान, अन्धविश्वास के अन्तर्गत ईश्वर की सत्य उपासना के स्थान पर की जाने वाली मूर्तिपूजा का खण्डन किया। वह हरिद्वार व ऐसे अन्य सभी धार्मिक स्थानों को जीवन के लिए लाभप्रद अर्थात् तीर्थ नहीं मानते थे अपितु इसे भी अन्धविश्वास व पाखण्ड मानते थे। अपने विवेक व वैदिक ज्ञान से उन्होंने जाना कि अवतारवाद, किसी एक का ईश्वर का सन्देशवाहक होना, किसी एक का ईश्वर का पुत्र कहलाना जैसी मान्यतायें भी असत्य, भ्रामक व वेदविरूद्ध हैं। फलित ज्योतिष, बालविवाह, जन्मना जाति व्यवस्था, सामाजिक विषमता तथा छुआछूत आदि का भी उन्होंने तर्क व प्रमाणों के साथ खण्डन किया। वह स्त्री व शूद्रों की शिक्षा के समर्थक थे तथा उन्होंने इन्हें वेदाध्ययन का अधिकार दिया। युवावस्था की विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन भी उन्होंने किया। मूर्ति पूजा पर उनका 16 नवम्बर, सन् 1869 को काशी के लगभग 30 शीर्षस्थ पण्डितों के साथ किया गया शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है जहां वह सब मिलकर भी मूर्तिपूजा को वेद सम्मत सिद्ध नहीं कर सके थे।

महर्षि दयानन्द ने कुछ सज्जन पुरूषों के परामर्श से सत्यार्थप्रकाश जैसे कालजयी ग्रन्थ की रचना भी की जिसमें उन्होंने अपनी वेद विषयक प्रायः सभी वा अधिकांश मान्यताओं का प्रकाश किया है। देश व विश्व में जितने भी मत-मतान्तर हैं, उनकी समीक्षा कर भी उन्होंने लोगों को यह बताया है कि सभी मतों में अज्ञान व अन्धविश्वास भरे पड़े हैं जिनको आंखे बन्द करके मानने से मनुष्य जीवन का कल्याण नहीं अपित पतन होता है। यदि मनुष्यों को अपने जीवन का कल्याण करना है तो मत-मतान्तरों की भ्रान्तिपूर्ण मान्यताओं व सिद्धान्तों को छोड़कर सत्य ज्ञान व शिक्षाओं से युक्त वेदों की शरण में संसार के प्रत्येक मानव को आना ही होगा जैसा कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक संसार के सभी मानव वेदों के अनुयायी व भक्त रहे हैं। महर्षि दयानन्द अधिक से अधिक जितना कार्य कर सकते थे, उन्होंने किया। उन्होंने अपने मिशन की पूर्ति के लिए आर्यसमाज जैसे एक अद्भुद प्रभावशाली अपूर्व संगठन की स्थापना 10 अप्रैल, 1875 को प्रथम मुम्बई में की। वेदों के आशय को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की जिनमें सत्यार्थ प्रकाश के अतिरिक्त ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरूणानिधि, संस्कृतवाक्यप्रबोध, भ्रान्तिनिवारण आदि अनेक ग्रन्थ हैं। इसके साथ ही उनका जीवनचरित, उनके प्रवचन, समस्त पत्रव्यवहार तथा भिन्न भिन्न मतों के विद्वानों से वार्तालाप, शंका समाधान तथा शास्त्रार्थ आदि भी सत्य ज्ञान व विवेक कराने में महत्वपूर्ण व सहायक हैं। महर्षि दयानन्द सभी मतों के विद्वानों व अनुयायियों से मिलते थे, उनके प्रश्नों के उत्तर देते थे, उनसे मौखिक व लिखित शास्त्रार्थ भी किए और सभी के प्रश्नों का समाधान किया। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने सत्य मान्यताओं के प्रकाशनार्थ संसार के सभी मतों की निष्पक्ष व पक्षपातरहित होकर समीक्षा भी की है जिससे कि सभी मतों के अनुयायी और विद्वान समान रूप से लाभान्वित हो सकें। लाभान्वित तो वह तभी हो सकते हैं कि जब वह अपने पूर्वाग्रहों को त्याग कर पक्षपातरहित होकर सत्य के प्रति पूरी तरह से समर्पित होकर उनका अध्ययन करें। ऐसा उन्होंने किया ही नहीं जिस कारण जो लाभ व लक्ष्य प्राप्त होना था, वह पूरा नही हो सका। इसके विपरीत यह हुआ कि सभी मत-मतान्तरों के लोग उनके स्वार्थों की हानि होने के कारण दयानन्द जी के विरोधी हो गये और उनके जीवन का अन्त करने की योजनायें बनाने लगे। अनेकों बार उनकों विष दिया गया परन्तु अनेक बार वह यौगिक क्रियाओं को करके बच गये। 29 सितम्बर, सन् 1883 को जोधपुर में वहां के महाराणा जसवन्त सिंह की वैश्या नन्हीं भगतन ने अपने कुछ पौराणिक व अज्ञात सहयोगियों की सहायता से उन्हें दुग्ध में विषपान कराया। उसके बाद उनकी चिकित्सा में भी असावधानी की गई। चिकित्सा भली प्रकार से नहीं की गई जिस कारण से 30 अक्तूबर, 1883 को अजमेर में उनका देहावसान हो गया और वह पंचभौतिक शरीर को छोड़कर अपने ज्ञान व विवेक से अर्जित मोक्ष अवस्था को प्राप्त हो गये।

आर्यसमाज का उद्देश्य सारे विश्व से धार्मिक व सामाजिक जगत से अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों को दूर करना तथा उन्हें सद्ज्ञान की शिक्षा देना है जिससे कि वह मनुष्य जीवन को सफल करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कर सकें। यह काम अभी अधूरा है जिसे निरन्तर करते रहना है, जब तक की उद्देश्य पूरा न हो जाये। आर्य समाज में भी विगत काफी समय से अनेक दुर्बलतायें आ गई हैं जिन्हें दूर करना होगा। मुख्य दुर्बलता संगठन का कमजोर होना है। आर्यसमाज से सभी प्रकार से छद्म लोगों की भी पहचान कर उन्हें संगठन से पृथक करना होगा जिनके कारण संगठन निर्बल व निस्तेज बना है। यदि संगठन सुगठित होगा तो परिणाम भी अच्छे मिलेंगे। आर्य समाज की एक सबसे बड़ी बाधा यह भी है कि सभी मत-मतान्तरों के आचार्यों के अनेक प्रकार के स्वार्थ अपने अपने मत से जुड़े हुए हैं जिन्हें वह छोड़ना नहीं चाहते। सच्ची आध्यात्मिकता व सामाजिक ज्ञान में उनकी प्रवृत्ति नहीं है। अतः इसके लिए वेदों के सत्यस्वरूप व उसकी प्राणीमात्र की हितकारी शिक्षाओं सहित मनुष्य जीवन के लक्ष्य व उसके प्राप्ति के साधनों का अधिकाधिक व्यापक प्रचार करना होगा। सत्य की अन्ततः विजय होती है। सत्य के समान अन्य कुछ बलशाली नहीं है। सत्य के सामने असत्य अधिक समय तक टिक नहीं सकता। यह भी सत्य है कि बिना पुरूषार्थ के सत्य विजयी नहीं होता। अतः आवश्यकता संगठित रूप से प्रचार रूपी सम्यक पुरूषार्थ की है। चरैवैति चरैवति को सम्मुख रखते हुए यदि सभी वेदानुयायी अपने जीवन को प्रचारमय बनायेंगे तो कृण्वन्तों विश्वार्यम और विश्ववारा वैदिक संस्कृति का लक्ष्य अवश्य प्राप्त होगा।

हम अनुभव करते हैं कि संसार के सभी मतों के मताचार्यों को किसी एक स्थान पर मिलकर एक दूसरे को अपने-अपने मत की विशेषतायें व महत्व को बताना चाहिये व दूसरे मतों के आचार्यों के सभी प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये था। जो मत सत्य सिद्ध हो जाता उसे सभी को अपनाना चाहिये था। यही सर्वमान्य मत विश्व के सभी मनुष्यों का मत बनता तो विश्व में भाईचारा बढ़ता और सर्वत्र प्रेम के नये युग का आरम्भ होता। इसप्रकार से सभी मतों में एकता का प्रयास कर सत्य को सबसे स्वीकार कराना आर्यसमाज का उद्देश्य है।

इस विषय में बहुत कहा जा सकता है। परन्तु इस लेख के माध्यम से आर्यसमाज के उद्देश्य व इसके कर्तव्य की ओर संकेत किया है जिसे पाठक समझ सकेंगे। इसके साथ ही लेखनी को विराम देते हैं।

**मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**